International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 03-04-2026, Accepted: 04-05-2026, Published: 19-05-2026
Volume 12, Issue 2, 2026, Page No. 124-130

दादू पंथी संत सुंदरदास का काव्य

हरिराम
सहायक आचार्य, हिंदी, राजकीय महाविद्यालय अंराई, अजमेर, राजस्थान, भारत

सारांश
भक्तिकाल को हिंदी साहित्य का स्वर्णकाल कहा जाता है। भक्ति की पावन धारा में निर्गुण और सगुण कवियों ने अवगाहन कर हिंदी भाषा को कालजयी साहित्य का उपहार दिया है। राजस्थान की भूमि पर निर्गुण भक्ति का बीजवपन करने वाले संतो में संत दादू दयाल अग्रगण्य है। संत दादूदयाल ने कबीर की साधना का अनुसरण करते हुए अपना पंथ स्थापित किया जिसमें रज्जब, जगजीवनदास, गरीबदास, मिस्कीनदास और सुंदरदास जैसे साधक हुए। सुंदरदास जी की विशेषता इस बात में थी कि वे निर्गुण मार्ग के पहले शास्त्रज्ञान प्राप्त अनुयायी थे। इस कारण जहां दादू दयाल ने मुख्यतः पदों और दोहों में अपनी वाणी कही है वहीं सुंदरदास ने चौपाई, मनहरण कवित्त, सव्वैया जैसे रीतिकाल के लोकप्रिय छंदों का भी प्रयोग किया है। शास्त्र ज्ञान से मंडित होने के बाद भी सुंदरदास ने निर्गुण के मूलभूत सिद्धांतों से कोई समझौता नहीं किया। उनके ग्रंथों में कबीर और दादू के विचार नयी भाषा और अभिव्यंजना शैली में व्यक्त हुए हैं। इस शोध आलेख में दोनों कवियों की कविता की विशेषताओं का विवेचन किया गया है।

मूल शब्दः निर्गुण भक्ति, बौद्ध परंपरा, दादूदयाल, सतनाम, सहज भक्ति, सुंदरदास, श्रृंगार प्रतिवाद

प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य का मध्यकाल संवत् 1375 से संवत 1900 के कालखंड को कहा गया है। इसको शुक्ल जी ने अपने ग्रंथ हिंदी साहित्य का इतिहास' में पूर्व मध्यकाल (संवत् 1375–1700) एवं उत्तर मध्यकाल (संवत् 1700–1900) में वर्गीकृत किया है। शुक्ल जी साहित्य को जनता की चित्तवृत्तियों का संचित का संचित प्रतिबिम्ब मानते हैं और युग की इन बदलती प्रवृत्तियों का निरुपण करना ही इतिहास लेखक का धर्म मानते है। मध्य काल के पहले कालखंड में उन्होंने भक्ति की प्रवृत्ति को प्रधान माना है और दूसरे में 'रीति की प्रवृत्ति की प्रधानता को स्वीकार किया है। मध्य कालीन हिंदी साहित्य के नामकरण में इतिहास लेखकों के दृष्टिकोणों की सीमाओं के बावजूद इस कविता को भारत की जातीय कविता का श्रैष्ठतम 'रूप माना गया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भातिकाल की कविता को दो धाराओं में प्रवाहित हुआ स्वीकार करते हैं इन धाराओं को वे निर्गुण और सगुण 'काव्य धारा नाम देते है। भक्ति के प्रवाह के संबंध में लिखते हैं कि–" जिस समय मुसलमान भारत में आये उस समय सच्चे धर्म भाव का बहुत कुए ह्रास हो गया था। प्रतिवर्तन के लिए बहुत कड़े धक्कों को आवश्यकता थी। उस अवस्था में कालदर्शी भक्त कवि जनता के हृदय को संभालने और लीन रखने के लिए दबी हुई भक्ति को जगाने लगे। क्रमशः भक्ति का प्रवाह ऐसा विकसित और प्रबल होता गया कि, उसकी लपेट में केवल हिंदू जनता ही नहीं देश में बसने वाले सहृदय मुसलमानों में से भी न जाने कितने आ गये।"[1]

इस संदर्भ में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का विचार विशेष उल्लेखनीय है जो हिंदी साहित्य को एक हतदर्प पराजित जाति की संपत्ति न मानकर भारतीय चिंता का स्वाभाविक विकास मानते हैं और भक्ति साहित्य को मानवता की प्रगति या जय यात्रा के अनुसंधान के लिए ज्ञातव्य वस्तु कहते है।

निर्गुण धारा की उत्पत्ति को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिंदु–मुसलमान दोनों के लिए एक सामान्य भक्तिमार्ग का विकास कहते है जिसका मूल स्रोत नामदेव है। "कबीरदास ने नाथ पंथियों को हृदय पक्ष शुन्य अंतस्साधना में वेदांत का निराकार ईश्वर भौर उस निराकार की भक्ति के लिए सूफियों का प्रेमतत्व लेकर अपना 'निर्गुण' धूमधाम से निकाला।"[2]

निर्गुण भाति की उत्पति के संदर्भ में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी बौद्ध साधना का ही रुपांतरण बताते है। अपने इतिहास ग्रंथ में द्विवेदी जी सरहपा के जाति–वर्ण विरोधी विचारों में कबीर आदी के ज्ञान मार्ग का सूत्र खोजते है। और लिखते हैं" यदि कबीर आदि निर्गुण मत वादी संतो की वाणियों की बाहरी रुपरेखा पर विचार किया जाए तो मालुम होगा कि यह पूर्णतः भारतीय है और बौध्द धर्म के अंतिम सिद्धों और नाथ पंथी योगियों के प्रदादि से उसका सीधा संबंध है। वे ही पद वे ही राग–रागिनियाँ, वे ही दोहे, वे ही चौपाईयाँ कबीर आदी ने व्यवहार की है जो उक्त मत के मानने वाले उनके पूर्ववर्ती संतों ने की थी।"[3]

तात्पर्य यह है कि, भक्ति काल हो अथवा रीतिकाल इन कवियों का समस्त भारतीय जन मानस पर गहरा प्रभाव है। आलोचकों ने एक मत से इस काल को हिंदी का स्वर्णयुग माना है। निर्गुण मत का दार्शनिक आधार वेदांत है साथ ही इस पर अन्य दर्शनों का प्रभाव देखा जा सकता है कबीर ने जो विचार सूत्र नाथो–और सिद्धों से पाये उनको नानक, दादू दयाल ने विस्तार दिया। दादू पंथ पर कबीर का प्रभाव किस तरह पड़ा है यह अध्ययन का प्रस्थान बिंदू हो सकता है दूसरा विचार सूत्र यह कि दादू दयाल और उनके पंथ पर उनके समय का प्रभाव कितना और किस रूप में दिखाई देता है।

संत दादूदयाल और उनका पंथ

निर्गुण पंथ का अनुसरण करने वाले संतों में कबीर के बाद जिन संतो की भक्ति परम्परा में प्रतिष्ठा हुई है उनमें दादुदयाल विशेष प्रतिभाशाली संत माने जाते है।

विद्वान इस पर तथ्य पर एक मत है कि दादू का जन्म समाज के नीचली कही जाने वाली जाति में हुआ था।

'आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी अपनी किताब' हिंदी साहित्य की भूमिका में संतो की सामाजिक पृष्ठभूमि टिप्पणी करते है कि "कबीर, दादू, जायसी ऐसे ही नाम–मात्र के मुसलमान थे जिनके परिवार में योगियों की साधना पद्धति जीवित रूप में वर्तमान थी।"[4]

इस संदर्भ में द्विवेदी जी संत कवियों की सामाजिक पृष्ठभूमि के इतिहास से अनभिज्ञ रहने और इन कवियों को सुने सुनाये ज्ञान की अटपटी वाणियों के गायक कहने पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मत पर प्रश्नचिन्ह भी लगाते हैं। आचार्य शुक्ल अपने युग

बोध, परम्परा बोध तथा उपलब्ध सामग्री की सीमाओं के भीतर रहकर कबीर दादू का मूल्यांकन करते है इस तथ्य को शुक्ल जी के दादू दयाल के जीवन चरीत्र में देखा जा सकता है। जिसमें वे दादू पंथियों के पवित्र स्थल भराने की पहाड़ी को दादू पंथियों का प्रधान अड्डा करते है। शब्दों का चयन देखने लायक है।

दादूदयाल के जन्म स्थान के बारे में प्रसिद्ध है कि उनका जन्म संवत 1601 के लगभग अहमदाबाद में हुआ था आचार्य शुक्ल लिखते है "दादू दयाल 14 वर्ष तक आमेर में रहे। वहां से मारवाड़, बीकानेर आदि स्थानों में घुमते हुए संवत 1659 में नरैना में आकर रह गये। नरैना के पास 'भराने की पहाड़ी पर संवत 1660 में शरीर छोड़ा।"[5]

दादू के बारे में प्रसिध्द है कि सम्राट अकबर ने उन्हे सीकरी में बुलाकर चालीस दिन तक निरंतर सत्संग किया था। सम्राट ने दादू से अपने खुदा (ईश्वर) का बयान करने का आग्रह किया तब कहते है दादू ने निम्न लिखित छंद में अपने मत का प्रकट किया था।

इश्क अलह की जाति है इश्क अलह का अँग।
इश्क अनह मौजूद है इश्क अलह का रंग।।
वाट विरह की सोधि करि पंथ प्रेम का लेहू।
लौ के मारग जाइए, दूसर पांव न देहू ॥

आचार्य शुक्ल लिखते है– "दादुदयाल का गुरु कौन था यह ज्ञात नहीं है। पर कबीर का इनकी बानी में बहुत जगह नाम आया है और इसमें संदेह नहीं कि ये उन्हीं के मत के अनुयायी थे।"[6]

अपने विनम्र और दयालु स्वभाव के कारण दायुदयाल कहलाए।

दादु पंथ की विशेषताएं

दादूदयाल कबीर की साधना पध्दति का अनुसरण एवं प्रचार करते रहे। उनकी विनय मिश्रित मधुरता एवं पवित्र आचरण के प्रभाववश उनके अनेक शिष्य बने। इनमे भीम सिंह उर्फ बड़े सुंदरदास, रज्जब, बखनाजी, गरीब दास, मिस्कीनदास, वाजिद, संत दास, जगजीवन दास और छोटे सुंदरदास दौसा वाले प्रमुख है।

दातु पंथ का सत्संग स्थल अलख दरीबा कहलाता है। दादु पथियों के सम्प्रदाय में दीक्षित शिष्य निरंजन निराकार की उपासना करते है। साथ में सुमरनी रखते है और 'सतनाम' कहकर अभिवादन करते है। इनके शिष्यों में से एक जगजीवन दास ने 'अपना अलग मार्ग निकाला जो" सतनामी सम्प्रदाय' कहलाया। बाद के समय में इनके धर्ममार्ग के कुछ अनुयायियों ने "अपना मस्तक काट के वीर हुए कबीर' की तर्ज पर मिथ्याचारों का मुखर प्रतिरोध करने के लिए 'नागा' पंथ भी बना लिया। इस 'नागा' दल का संगठन दादु के शिष्य भीम सिंह करते हैं। यह संगठन बीसवीं सदी तक चलता रहा। दादु दयाल की जीवनी दादुपंथी 'जन गोपाल' ने लिखी। इस जीवनी में दादू का व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली बताया गया है कि सीकरी प्रवास के दौरान अबुल फजल और बीरबल भी उनसे ज्ञान की बातें करने आते है। दादु पंथ की विशेषताओं का जहां तक प्रश्न है उसमें अधिकांश कबीर जैसी ही भक्ति प्रवृतियां दृष्टिगत होती है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते है "उनके स्वभाव में कबीर के मस्तानेपन के बदले विनय मिश्रित मधुरता अधिक थी। सामाजिक कुरीतियों धार्मिक रूढ़ियों और साधना संबंधी मिथ्याचारों पर आघात करते समय दादू कभी उग्र नहीं होते। अपनी बात कहते समय वे बहुत नम्र और प्रीत दिखते है।"[7]

दादु पंथ के सिध्दांत पक्ष में निर्गुण मार्ग के तत्वों की आवृति पर आचार्य शुक्ल लिखते है। "इनकी बानी में भी वे ही प्रसंग है, जो निर्गुणमार्गियों की बानियों में साधारणतया आया करते हैं। जैसे ईश्वर की व्यापकता, सतगुरु की महिमा, जाति–पाति का निराकरण हिंदू–मुसलमानों का अभेद, संसार की अनित्यता, आत्मबोध इत्यादी।"[8]

दादू दयाल जी की आचार पद्धति का प्रमाण उनकी बाणी में से कुछ पद्यों से सहज मिल जाता है– यथा–

1. नाथ पंथियों और सहज यानियों का प्रभाव

योगियों का माया निरुपण दादू दयाल में शब्दशः देखा जा सकता है

सिद्धों का माया निरूपण

उठया मारूम मारूम बैठ्या मारूम जागा सूता।
तीन धामे काम जाल विछाइम कोइ जाबि रे पुता।

दादू दयाल का माया निरुपण

उठ्या मारूं बैठ्या मारूं मारूं जागत सूता।
तीन भवन भगजाल पसारूं कहां जायगा पुता।

इसी तरह दादु दयाल ने बौध्दों के शून्य वाद को शांत निर्वाण पद और लय–लीन समाधि की व अवस्था माना है, इस तथ्य के प्रमाण उनके दोहों में मिलते है।

कुछ नाही का नांव धरि, भरमा सब संसार।
साँच झूठ समझे नहीं ना कुछ किया विचार।।

स्पष्ट है कि दादूदयाल ने पुर्ववर्ती साधकों के योग मार्गी पारिभाषिक शब्दों की अपने देश काल के अनुरूप व्याख्या की, यह उपर्युक्त दोहे से स्पष्ट हो जाता है।

2. कबीर के मार्ग का अनुसरण

दादू कबीर के पथ पर ही चलते हैं और कबीर के महत्व की स्पष्ट घोषणा भी करते हैं। वे कहते है कि कबीर दास ने निर्गुण ब्रह्म की समाधि के विषय में मुसलमानों का सूफी मार्ग छोड़ दिया था और हिंदुओ के कर्मकांडों से भी अलग हो गये थे। कबीर सहज की उस स्थान पर विश्राम कर सकते थे जो सम्प्रदायों से अतीत है जहां अल्लाह और राम की गम नहीं है।

"निर्गुण ब्रह्मम को कियो समाधू। तब ही चले कबीरा साधु।।
तूर्क की राह–खोज सब छोड़ी। हिंदू के करनी ते पुनि न्यारी।।
सुर नर मुनिजन ओलिया ए सब उरली तीर।
अलह राम की गम नही, तहं घर किया कबीर।"

कबीर की तरह दादू भी अंधानुकरण की जगह विवेक को विशेष महत्व देते हैं। साधु का भेस धारण करने से कोई गुणवान नहीं हो जाता। पंथ को चुन लेने मात्र से कुछ हासिल नहीं होता, उसे व्यवहार में अपना कर ही साधक मुक्त हो सकता है। जैसा कि कबीर ने भी कहा है कि सोना और गुंघची, जिससे सोने का तोल होता है तोल में बराबर हो सकते है पर सवाल जब गुण का आता है तो सोना सोना होता है और गुंघची गुंघची होती है। साधक को सत्य मर्ग पर चलना खुद ही पड़ता है।

भेक बराबर भेक गुण बराबर नाहीं।
तोल बराबर गुंधची मोल बराबर नाहीं।

3. प्रेम मय भगतद् सत्ता में लीनता

दादू दयाल की भक्ति रीति में प्रेम का अगाध महत्व है। चितवृत्तियों को सांसारिक माया जाल से विरत कर एक अनंत प्रेममय सत्ता में लीन करने पर दादू दयाल विशेष जोर देते है। इसका अनुमान इस दोहे से लगाया जा सकता है

जहां जगत गुरु रहत है, तहाँ जो सुरति समाई।
तौ इन नैनहु उलटी करि, कौतिक देखे आए।

इस महासुख या अखंड आनंद का वर्णन नाथ पंथियों विशेषकर गोरखनाथ भी कर गये थे।

नौ लख पातरी आगे नाचे, पीछे सहज अखाड़ा।
ऐसे मन लें जोगी खेलै, तब अंतरि बसे भंडारा।"
इसे कबीर सहज समाधि कहते है।

4. परम सत्ता से रागात्मक संबंध

मध्य युग के संपूर्ण साहित्य में भक्त हो या संत वह स्वयं को सर्वशक्तिमान के साथ एक व्यक्तिगत संबंध बना लेता है। दादू उस परम सत्ता को प्रियतम के रूप में देखते हुए प्रतीत होते है। वे विरह में भावविभोर होकर कहते हैं– हे केशव! तुम्हारे बिना में व्याकुल हूँ, मेरी आंखों में पानी भर आया है। हे अंतर्यामी, तुम अगर छिपे रहोगे तो मैं कैसे बच सकता हूँ? तुम स्वयं छिप रहे हो, मेरी रात कैसे कटेगी? तुम्हारे दर्शन के लिए जी तड़फ रहा है।"

तुम बिन व्याकुल केसवा नैन रहे जल पूरी।
अंतर जामी छिप रहे हम क्यों जीवे दूरी।।
आप अपर छन होइ रहे, हम क्यों रैन विहाई।
दादू दरसन कारने तलफि तलफि जिय जाइ।।

5. नित्य लीला या रति की भावना

भगवान का ज्ञान स्वरूप ब्रह्म कहलाता है निर्गुण भाव से भजन करने वाला साधक भगवान की इसी ज्ञानमय सत्ता में अनंत काल तक रमते रहने की लालसा रखता है। दादु दयाल उस परब्रह्म को सर्व व्यापक मानते है और आत्म मंथन के द्वारा उसे कण कण में देखने का रास्ता सुझाते है।

घीव दूध में रमि रख्या व्यापक सबही ठौर।
दादू बकता बहुत है पर मथि काढ़े तें और।।

आत्म बोध हो जाने पर साधक उस सत्ता को अपने आसपास अनुभव करता है। ज्ञाता और ज्ञेय का भेद मिट जाता है। जीवात्मा रूपी प्रेयसी परमात्मा रुपी प्रियतम से ऐसी मिलती है कि फिर वियोग की संभावना निश्शेष हो जाती है।

"रंग भरि खेलों पीव सौं तहं बाजे बेनु रसाल।
अकल पाट करि बैठ्या स्वामी प्रेम पिलावे लाल।
रंग भरि खेलौं पीव सौं बारह मास वसंत।
सेवक सदा अनंद है जुगि जुगि देखो कंत ॥"

6. भक्ति की महिमा का गायन

दादू दयाल के राम अपार है वह सम्पूर्ण चराचर जगत और रोम रोम में व्याप्त है। ठीक राम की तरह ही राम की भक्ति भी अपार महिमामयी है। ज्ञानी, ध्यानी, ऋषि, मुनि इसको मापने में सफल नही हो सकते। यह अनुभव की वस्तु है। पारखी भी प्रेम की कीमत नहीं बता सकता जब तक स्वयं उसके रंग में न रंग जाए। दादू परमात्मा को निकट से निकटतर और भक्ति को अनिर्वचनीय गूंगे के गुड़ समान मानते है। प्रमाण स्वरूप कुछ बाणी के पद्यांश देखे जा सकते है।

'दादू देख दयाल को सकल रहा भरपूर।
रोम–रोम में रमि रह्या तू मत जाने दूर ॥
केते पारखी पचि मुए कीमति कही न जाइ।
दादू सब हैरान है गूंगे का गुड़ खाइ ॥

जैसा राम अपार है तैसी भगति अगाध।
इन दोनों की मित नहीं सकल पुकारें साध।
जैसा निरगुन राम है भगति निरंजन जान ॥
इन दोनों की मित नही संत कहै परवान।।

7. अनन्यता का भाव

दादू दयाल परब्रह्म के साथ उसी तरह लीन होने के आकाँक्षी है जिस तरह पानी में नमक घुल जाता है। ऐसे रूपक पुर्ववर्ती सहज यानी सिहदों की महा सुख अवस्था के वर्णन में भी मिलते है। जैसे कण्हपा जो चौरासी सिध्दों में थे। उनकी कविता में ऐसे रूपक देखे जा सकते है। जिस अर्थ में कण्हपा समाधिस्थ चित्त की अवस्था का वर्णन करते है। ठीक उसी अर्थ में दादू करते है।

कण्हपा (संवंत 900)

जिमि लोण बिलज्जइ पाणिएहि तिमि धरिणी लइ चित्त।
समरस जइ तक्खणे, जड़ पुणु ते सम नित्त ।।

दादू दयाल

जब मन लागे राम सों, तव अनत काहे को जाइ।
दादू पाणी लूण ज्यों ऐसे रहै समाइ।।

8. नाम की महिमा

दादू पंथ में 'सतनाम की महिमा है। सांसारिक मुक्ति के लिए परब्रह्म परमात्मा का नाम सुमिरन ही उपाय है। नाम को दादू पंथ में सार तत्व माना गया है। सुमिरन मति बुद्धि और विचार को जाग्रत करता है साथ ही सिरजनहार परब्रह्म के लिए प्रेम बढ़ाता है। नाम सुमिरन से ह्रदयभूमि पर प्रेमरस की वर्षा होती है।

साहिब जी के नाऊँमां मति, बुध्दि ज्ञान विचार।
प्रेम प्रीति सनेह सुख दादू सिरजन हार ॥

9. सहजता पर विशेष जोर

दादु अपने दयालु स्वभाव के कारण दादु दयाल कहलाये जाते हैं। दादू आचरण की पवित्रता पर विशेष जोर देते हैं। व्यर्थ के वाद विवाद, खंडन–मंडन से बचना और सभी जीवों के प्रति समदृष्टि, आत्मवत भाव से व्यवहार करना चाहिए। काम वासना, वैर भाव, क्रोध, अहंकार से साधक को बचना चाहिए। केवल भेस धारण करने से नही बल्कि आचरण की मर्यादा से ही साधक निरगुण निराकार को सहजता से जान सकता है। द्विवेदी जी लिखते है "दादू ने बराबर इस बात पर जोर दिया कि भक्त होने के लिए नम्र, शीलवान, अफलाकांक्षी और वीर होना चाहिए। कायरता साधना की सबसे बड़ी शत्रु है।"[9]
आगे दिये गये पद्य में दादू दयाल अपने पंथ का सांगोपांग वर्णन करते हैं।

भाई रे ऐसा पंथ हमारा।
द्वै पख रहित पंथ गहे पूरा अबरन एक अधारा।
बाद विवाद काहू सौ जाहीं, में हूँ जग थें न्यारा।
समदृष्टि यूँ भाई सहज में आपहिं आप विचारा।
मैं, तैं, मेरी यह मति नाहीं निरबैरी निरबिकारा।
काम कल्पना कदे न कीजें, पूरन ब्रह्म पियारा।
एहि पथि पहुँचि पार गहि दादू सो तब सहज संभारा ॥

दादूपंथी सुंदरदास जी और उनका काव्य

1. परिचय

पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है कि दादु दयाल जी प्रभावित होकर अनेक शिष्य बने। कहते हैं दादू के मधुर स्वभाव का उनके पंथ के विस्तार में बहुत योगदान था। दादू दयाल के पंथ को

आगे प्रचारित करने में इनके शिष्यों ने बहुत योगदान किया। संतदास जी ने अपने गुरु दादू की बानी का संपादन" हरड़े वाणी' नाम से किया। रज्जब ने भी अंगवधु नाम से पद्यों का संग्रह किया था। दादू पंथ को परम्परा में ही जगजीवन दास हुए जिन्होंने सतनामी सम्प्रदाय आरम्भ किया। 'राघोदास ने अपने 'भक्त माल' में दादू के प्रमुख बावन शिष्यों का उल्लेख किया है, जिनमें रज्जब और सुंदरदास प्रमुख थे।"[10]
सुंदरदास दादू के शिष्यों में एक मात्र शास्त्र ज्ञान संपन्न कवि माने जाते हैं।

2. सुंदरदास जीवन परिचय

संत दादू दयाल के शिष्य सुंदरदास का जन्म दौसा में परमानंद खंडेलवाल के घर हुआ था। 6 वर्ष की अल्पायु में ही वे संत दादूदयाल के शिष्य हो गये और 11 वर्ष की आयु में संत जगजीवन और संत रज्जब के साथ काशी की यात्रा की। समस्त विद्याओं से पारंगत होकर 1625 ई. में फतेहपुर शेखावटी लौट आए। यहां 12 वर्ष तक योग साधना की। उसके उपरात जीवन भर देशाटन करते हुए दादू के सिध्दांतों का प्रचार करते रहे और काव्य रचना भी करते रहे। इन्हें भक्ति परंपरा में दूसरा शंकराचार्य भी कहा गया है।
अपने गुरु के प्रति अनन्य भक्ति और समर्पण की घोषणा सुंदरदास ने मुखरता से की है। यह बात उनके सुंदर विलास के इस सव्वैये में लक्षित की जा सकती है।

"कोउक गोरख को गुरु थापत कोउक दत्त दिगंबर आदू।
कोउक कंथर कोउक भर्थर, कोउक कबीर को राखत नादू।
कोउक कहे हरदास हमार जु यूं करि ठानत वाद विवादू। और तो संत सबै शिर ऊपर, सुंदर के, उर है गुरु दादू ॥"

3. संत सुंदरदास का रचनाकर्म

आचार्य शुक्ल लिखते है निर्गुण पंथियों में यही एक ऐसे व्यक्ति हुए है, जिन्ते समुचित शिक्षा मिली थी और जो काव्य कला की रीति आदि से अच्छी तरह परिचित थे। सुंदरदास ने बयालीस ग्रंथों की रचना की थी, जिनमे 'ज्ञान समुद्र' और सुंदर विलास अधिक प्रसिद्ध है।
सुंदरविलास में कवित्त, सवैये है, सुनियोजित अलंकारों शुद्ध छंदो की आवृति इसकी उल्लेखनीय विशेषताए है।
पुरोहित हरिनारायण शर्मा द्वारा संपादित 'सुंदर–ग्रंथावली (दो भाग) सुंदर दास की सभी रचनाओं का प्रामाणिक संकलन है।
सुंदरदास ने छत्रबंध आदि प्रहेलिकाओ से भी अपने काव्य को सजाने का प्रयास किया है।
संस्कृत व्याकरण, साहित्य और दर्शन का तत्त्ववाद भी सुंदर दास के काव्य में प्रचूर मात्रा में पाया जाता है। उनकी छत्र बंध पहेली का उदाहरण द्रष्टव्य है।

पति ही यूँ प्रेम होय, पति ही यूँ नेम होय पति ही सूं छेम होय, पति ही सूँ रत है।
पति ही है जज्ञ जोग, पति ही है रस भोग पति ही सूं मिटे सोग, पति ही को जत है।
पति ही है ज्ञान ध्यान, पति ही है पुन्य दान पति ही है तीर्थ, न्हान, पति ही को मत है।
पति बिनु पति नाहिं, पति बिनु गति नाहिं सुंदर सकल विधि एक पतिव्रत है।।

सुंदरदास के काव्य की प्रमुख विशेषताएं

1. प्रस्थान बिंदू

पहले उल्लेख किया जा चुका है कि संत सुंदरदास संत दादू दयाल के शिष्यों में सबसे अधिक प्रतिभाशाली हुए। दलपत सिंह राज पुरोहित अपने शोध ग्रंथ "भक्ति और रीति काव्य–धाराओं का सवांद और दादू पंथी सुंदर दास की कविता" में सुंदर दास के काव्य के हिंदी साहित्य के इतिहास में पुनर्विचार की आवश्यकता को रेखांकित करते हुए लिखते हैं कि "रीति काल में सुंदर दास जैसे निर्गुण कवि हुए जिन्होंने साहुकार अर्थात उच्च वर्ग से आते हुए भी अपनी वर्गीय चेतना के विरुद्ध धुनिया' दादु का शिष्यत्व ग्रहण किया और अपने आस पास के भौगोलिक क्षेत्र में जैन व वैष्णव धर्मावलम्बी सेठ–साहुकारों तथा सूफी कवियों का जबरदस्त प्रभुत्त होते हुए भी सुंदरदास ने निर्गुण–भक्ति का रास्ता चुना। शास्त्रों में दीक्षित होने पर भी उनसे आक्रांत नहीं हुए और उनका बोझ उतारकर उन्होने लोक के लिए सरल सहज भक्ति मार्ग का रास्ता बनाया। ये संत–कवि भी भक्ति की परम्परा की ही विकसित कर रहे थे। और रीति कवियों से कविता के प्रति मानों पर शास्त्रार्थ करके भक्ति का विकास ही कर रहे थे।"[11]
स्पष्ट है कि संत सुंदरास जी का काव्य न केवल शास्त्रीय आधार लिए हुए है बल्कि देशाटन से अर्जित अनेक अभिव्यजनाओं का कोष है जिसका सम्यक मूल्यांकन हिंदी के विद्यार्थियों को आकर्षित करता रहा है।

2. सुंदर दास के काव्य प्रतिमान

सुंदर दास निर्गुण संत थे। जबकी उनका समय श्रृंगार की रीति से बोझिल था। ऐसी स्थिति में 'ज्ञान' और 'रस'
का अंतर्द्वंद्व उनके समझ भी उपस्थित हुआ होगा इसका प्रमाण हमें उनके काव्य प्रतिमानों विषयक पद्यों से मिलता है।उनके आधार पर कुछ प्रतिमान निश्चित किए जा सकते हैं।

2.1 श्रृंगार रस का प्रतिवाद

सुंदरदास की कविता में भक्ति और ज्ञान चर्चा के अतिरिक्त योग साधना नीति और देशाचार पर मार्मिक पद मिलते है।
अपने समय की धारा के विपरित सुंदरदास श्रृंगार रस की रचनाओं के मुखर विरोधी थे। वे रीति आचार्य केशव दास की 'रसिक प्रिया' नंददास की रस–मंजरी और सुंदर कविराय–कृत' सुंदर श्रृंगार की भरपूर निदा करते हैं ऐसी रचनाएं कामवासना से पीड़ित संसार को औषधि के नाम पर रीति कवि परोस रहे थे जो पाठको के रोग को बढ़ा रही थी।

रसिक प्रिया रसमंजरी और सिंगारहि जानि।
चतुराई करि बहुत विधि विषै बनाई आनि।
विषैं बनाई आनि लगत विषयिन को प्यारी।
जागै मदन प्रचंड, सराहें नख शिख नारी ॥
ज्यों रोगी मिष्टान्न पाइ रोगहि विस्तारै।
सुंदर यह गति होइ जुतो रसिक प्रिया धारे ॥[12] (पृ० 159)

2.2 भक्ति रस का प्रबल समर्थन

सुंदर दास उस काव्यरचना के प्रबल पक्षधर है जो परब्रह्म परमात्मा की भक्ति से सरोबार होती है

है यह अति गम्भीर उठति लहरि आनंद की।
मिष्ठ सूं याकौं नीर, सकल पदार्थ मध्य है।

भक्ति रस उथला और क्षणिक नही बल्कि गंभीर और शाश्वत है।

2.3 काव्य साधना की रीति का समर्थन

सुंदर दास को कविता काव्यशास्त्र की पीठिका पर विराजमान होने के कारण साहित्यिक और सरस है। काशी प्रवास के समय उन्होने काव्यशास्त्र और दर्शन का अभ्यास किया था। आचार्य शुक्ल सही लिखते है कि, "व्यर्थ को तुकबंदी और ऊटपटांग बानी उनको रुचिकर न थी।"[13]
अन्त साक्ष्य के रूप सुंदर दास का यह कवित्त देखने योग्य है

बोलिए तौ तब जब बोलिवे की बुद्धि होय, ना तौ मुख मौन गहि चुप होय रहिए।
जोरिए तो तब जब जोरिबे की रीति जाने तुक छंद अरथ अनूप जामै लहिए।
गाइए तौ तव जब गाइनबे को कंठ होय, श्रवण के सुनत हीं मनै जाय गहिए।
तुक भंग, छंद भंग, अरथ मिले न कछु सुंदर कहत ऐसी वाणी नहि कहिए।

शुक्ल जी सुंदर दास के शास्त्रीय ज्ञान को उपयोगी मानते है वहीं आचार्य द्विवेदी लिखते हैं कि" शास्त्रा– भ्यास जहाँ का परिणाम यह हुआ था कि उनकी कविता के बाह्य उपकरण तो शास्त्रीय दृष्टि से कथंचित निर्दोष हो सके थे पर वक्तव्य विषय का स्वाभाविक वेग जो निर्गुण संतो की सबसे बड़ी विशेषता है, कम हो गया।"[14] (प्र०103)

संत सुंदरदास की काव्य वस्तु

प्रस्थान बिंदु

कविता के विषय कविता के उद्देश्य के अनुरूप होते हैं। भावक की मानसिक भूमि के अनुसार कविता निस्रत होती है। सुंदरदास अन्य निर्गुण संतो से अपने शास्त्रज्ञान के कारण ही अलग नहीं ये बल्कि उनका पाठक / श्रोता वर्ग भी अधिक शिक्षित समाज था। सुंदर दास ने देश–देशांतर का भ्रमण भी किया था इसलिए उनका देशाचार संबंधी अनुभव उनके कवित्त सव्वैयों को जीवंतता प्रदान करता है। सबसे विशेष बात है शास्त्रीय ज्ञान सम्पन्न सुंदरदास का अपने शास्त्रज्ञान रहित गुरु के प्रति अगाध सम्मान जो हृदय की अंतरतम गहराईयों से निस्रत जान पड़ता है। सुंदरविलास में प्रकरणों को अंग कहा गया है।

1. गुरु देव को अंग

संत सुंदरदास दादू के अनन्य भक्त थे। वे गुरु को रवि की उपमा देते है जिन्होंने जीवन के भ्रम अंधकार का निवारण किया है। अपने गुरु के गुणों का वर्णन सुंदर बहुत ही आदर से गद्‌गद् होकर करते है। गुरु पूर्ण ब्रह्म के विचारक काम–क्रोध–लोम–मोह से विरत, धीरजवंत, अडिग, जितेन्द्रिय, शील, संतोष, क्षमा से भरे हदय वाले है। सुंदर दास सभी अन्य मत मतांतर के संतो को सिर नवाकर नमन करते है पर हृदय के अंदर दादू दयाल जी को रखते है।जीवन में गुरु की दया और शब्द मिलजाए इससे बढ़कर सार्थकता सुंदर के लिए कुछ भी नहीं है।

मौज करी गुरु देव दया करी शब्द सुनाय कियो हरि नेरो।।
ज्यों रवि के प्रकटे निशि जात सु दूरी कियो भ्रम भानि अंधेरो।।
कायिक वाचिक, मानस हूँ करि, है गुरु देवहि वंदन मेरो।।
सुंदर दास कहै कर जोरि जु, दादू दयाल को हूं नित चौरो ॥[15] (पृ 129)

2. उपदेश चिन्तामणि को अंग

इस अंग में संत सुंदरदास मनुष्य को सांसारिक माया से सावधान करते है। निरन्तर खत्म होते जीवन की अनमोल वस्तु आत्म शोधन है। सुंदर दास वृद्धावस्था की कुरूपता का वर्णन करते हैं और मन को हरि भजन के लिए प्रेरित करते है।

उदा०

संत सदा उपदेश बतावत, कैस सबै सिर सेत भये है।
तू ममता आज की काल चले उठि मूरख तेरे तो देखत केते गये हैं।।
सुंदर क्यों नहीं राम संभारत या जग में कहौ कौन रहे हैं।।

3. काल चिंतामणि को अंग

मनुष्य जीवन उसी तरह बीत जाता है जैसे तेल जलने पर बाती बुझ जाती है। मनुष्य जैसा सोचता है वैसा नही होता काल के आगे सब धरा रह जाता है।

उदा०

तू कछु ओर विचारत है नर तोर विचार धरयोहि रहेगा।।
कोटी उपाय करे धन के हित, भाग लिखो उतनो हि गहेगो।।
भोर की सांझ घरी पल माँझ सूं काल अचानक आय गहेगों।।
राम भज्यो न कियो कछु सुकृत, सुंदर यूं पछताय रहेगो ॥

4. तृष्णा को अंग

भोग की लालसा का अंत नहीं, मनुष्य ही खत्म हो जाता है पर तृष्णा खत्म नहीं होती। यह तृष्णा मृत्य का मूल कारण है।

उदा०

जो दश–बीस पचास भये सत होई हजार तू लाख मंगेगी
कोटी अरब्ब खरब्ब असंख्य धरा पति होन की चाह जजेगी।।
स्वर्ग पतालकु राज करौ तृष्णा अधिकी अति आग लगेगी।
सुंदर एक संतोष बिना शठ, तेरि तु भूख कभी न भगैगी।।[16] (पृ 150)

5. विश्वास को अंग

परम पिता परब्रह्म की दया पर विश्वास रखने का उपदेश सुंदरदास देते हैं। जो सभी प्राणियों का पेट भर रहा है वह विश्वासी जन का पेट भी भरता है।

उदा०

जा दिन ते गर्भवास तज्यों नर आइ अहा लियो तब ही को।
खात ही खात भये इतने दिन जानत नाहिन भूख कहीं को।
दौरत धावत पेट दिखावत, तू शठ कीट सदा अनहीकौ।
सुंदर क्यूं विश्वास न राखत, सो प्रभु विश्व भरे सब ही कौ।

6. चाणक को अंग

इस प्रकरण में सुंदरदास जी अपने युग में प्रचलित कर्म–काण्डों, आडम्बरों की मुखर प्रतिवाद करते थे। उनके लिए गुरु कृपा से उद्‌घटित हुआ आत्मबोध सबसे दिव्य वस्तु है।

उदा०

आप ही के घर मांही प्रकट परमेश्वर है
तांही छोड़ भूल नर दूर दूर जाता है।।
कोई दौरे द्वारिका को कोई काशी जगन्नाथ,
कोई दोरै मथुरा, के हरिद्वार–न्हात है।।
कोई दोरै बदरी को विषम पहार चढ़ै
कोई तो केदार जाइ मन में सिहात है।
सुंदर कहै गुरु देव देइ दिव्य नैन
दूर ही ते दूर बीन निकट दिखात है।

7. निर्गुण उपासना को अंग

निर्गुण ही परब्रह्म का रूप है। वह सर्वव्यापक, अखंड अंतरयामी है और सदैव समस्त चराचर के सिर के ऊपर रहता है। मगर माया से आवरण के कारण जीव भ्रमित रहता है।

उदा०

जो उपजे विनसे गुण धारत, सो यह जानहूं अंजन माया
आय न जाय मरे नही जीवत, अच्युत एक निरंजन राया।
ज्यूं तरु तत्व रखे रस एकही आवत जात फिरे यह छाया
सो परब्रहम सदा सिर ऊपर, सुन्द रता प्रभु में मन लाया।

8. स्वरूप विस्मरण को अंग

सुंदरदास जी निज–स्वरूप को पहचानने के लिए ज्ञान ज्योति की चिन्गारी की आवश्यकता बतलाते है। तरह–तरह के मत मतातरों में भटककर उपाधियां धारण कर जीव, निज से और भी दूर हो जाता है। वह सच्चिदानंद स्वरूप को भूला रहता है।सिंह होकर भी जीवन सियार की भांति जीवन यापन करता है।

उदा०

जो कोई त्याग कर अपनो घर, बाहर जाय के वेष बनावे मूंड मुंडाई रु कान फराई ,विभूति लगाइ जटाहू बढ़ावे।
जैसो ही स्वांग करे वपु को पुनि, तैसो ही मानत त्यूं हुई जावे।
त्युं यह सुंदर आप न जाने भूलि स्वरूप हि और कहावे ॥

विचार करने पर शुद्ध स्वरूप का ज्ञान होता है नामरूप की उपाधियों का भ्रम मिटाने का विवेक जाग्रत होने पर सत चित आनन्द स्वरूप परब्रह्म घट में ही दिखता है।

उदा०

एक ही कूपते नरहू सींचत, ईख अफीम अम्ब अनारा।
होत उहै जलस्वाद अनेकनि मिष्ट कटक खटा अरु खारा।
त्यू ही उपाधि संयोगते आमत,दीसत आहि मिल्यो सविकारा।
काढ़ि लिये सुविवेक विचार सुं, सुंदर शुध्द स्वरूप हि न्यारा।

9. साधु सत्संग को अंग

साधुओं के सत्संग का सेवन मन को निर्मल करता है। साधू पारस के समान है जो अपने समान बना लेते हैं। निज रूप का बोध करा देते है।सुन्दरदास ने सत्संग को चंदन, औषधि, और गंगा बताया है । संतो का सत्संग सूर्य के उदय के समान है जो अंधकार को क्षीण कर निज स्वरूप का बोध करा देता है। संतसग दुर्लभ वस्तु है।

उदा०

तात मिले, पुनि मात मिले, सुत भ्रात मिले जूवती सुखदाई राज मिले, गजवाजि मिले सब, साज मिले मनवांछित पाई लोक मिले सुरलोक मिले, विधि लोक मिले वैकुण्ठहु जाई सुंदर और मिले सबही सुख, संत समागम दुर्लभ भाई ॥

इसी तरह में अनेक कवित सवैये पवित्रता को अंग, शुरातन को अंग, ज्ञानी को अंग, अंतर्गत संग्रहित है।

संत सुंदर दास के काव्य की प्रासंगिकता

मध्यकालीन हिंदी काव्य भारत बोध का काव्य है। हमोर वर्तमान का निर्माण अतीत को भाव भूमि पर हुआ है। इसलिए वर्तमान समाज, साहित्य पर भक्तिकाल रीतिकाल का गहरा प्रभाव् आया है। सुन्दरदास अपने काव्य में प्राच्य विधानों वेद ज्ञान बौध्द साधना के उत्तरवर्ती विधानों को आधार बनाते है। समय कठोर परिवर्तनों के मध्य भारत बोध का दीप' संत काव्य में जलता रहा है जिसके प्रकाश में समुचे मध्यकाल का समाज उपास्थित हो जाता है

1. भारतीय दर्शन का गायन

सुंदरदास की कविता भारतीय दर्शन और साधना का रसमय आख्यान करती है। अद्वेत परब्रहम वेदांत, भक्ति, योग सबका सुंदर चित्रण उनका काव्य है।

2. गुरु शिष्य परम्परा का बोध

सुंदर दास के काव्य में निर्गुण साधना की गुरु शिष्य परम्परा की सुंदर अभिव्यक्ति है। साधु सँग की भारतीय संस्कृति के चित्र उनकी कविता में बहुत ही प्रभाव से अंकित हुए है।

3. योग संजीवनी का तात्विक निरुपण

वर्तमान समय में मानसिक तनाव एक वैश्वेकि महामारी बन गया है। संतो का शील, संतोष से भरपुर व्यक्तित्व और वाणी ऐसे वातावरण में एक उपचार की तरह है। योग साधना जो चित्तवातियों के निरोध पर केन्द्रित है, के गूढ़ तत्वों का सरस छ्दो में विवेचन सुंदरदास की कविता में है जिसका सम्यक मुल्यांकन अभी होना है

4. देशाचार के सूत्र

सुंदरदास ने मध्यकालिन भारत का बहुत देशाटन किया था उस समय के गुजरात, मारवाड़ वगाल, दक्षिण भारत के खान–पान आचार विचार का प्रत्यक्ष अनुभव उनके काव्य में दर्ज है। यह हमारे अतीत को समझने का एक माध्यम है

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि, संत सुंदर दास दादू पंथ के सबसे प्रतिष्ठित साहित्यकार है। निर्गुण संतों के दर्शन और मार्ग को प्रशस्त करके आम जनता के लिए सुगम बनाने में उनका काव्य बहुत सहयोगी सिद्ध हुआ है। विगत पांच सौ वर्षों से उनकी कविता रुपी गंगा में संत्सगियों ने अवगाहन कर आत्म बोध किया है। शिक्षित वर्ग से लेकर अशिक्षित जनता तक सुंदरदास का काव्य समादर्त है। उनकी कविता आत्म विश्वास देने वाली कविता है।

सुंदर दास ने अपने समय की उथल पुथल के बीच भी बोद्ध सिम्दों नाथों, वेदांत के दार्शनिक अमृत को कलम से संरक्षित किया है।

संदर्भ

1. रामचंद्र शुक्ल: हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सन् 2005, पृष्ठ 62
2. रामचंद्र शुक्ल: हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सन् 2005, पृष्ठ 63
3. हजारी प्रसाद द्विवेदी: हिंदी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली, 2016, पृ० 42
4. हजारी प्रसाद द्विवेदी: हिंदी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली, 2016, पृ० 41
5. रामचंद्र शुक्ल: हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सन् 2005, पृष्ठ 78
6. रामचंद्र शुक्ल: हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सन् 2005, पृष्ठ 78
7. हजारी प्रसाद द्विवेदी: हिंदी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली, 2016, पृ० 102
8. रामचंद्र शुक्ल: हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सन् 2005, पृष्ठ 78
9. हजारी प्रसाद द्विवेदी: हिंदी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली, 2016, पृ० 102
10. डॉ तारक नाथ बाली: निर्गुण भक्ति साहित्य हिंदी साहित्य का इतिहास (संपादक डॉ नगेद्र) मयुर पेपरबैक्स, नोएडा, 2009, (पृष्ठ 127)
11. डॉ दलपत सिंह राजपुरोहित: शोध पत्र भक्ति और रीति काव्य धाराओं का संवाद और दादूपंथी सुन्दरदास की कविता, पृष्ठ 44
12. सुंदरदास: सुंदरदास ग्रंथावली, संपादक स्वामी नारायण दास, श्री दादू दयालु महासभा जयपुर, 1990 (पृष्ठ 159)
13. रामचंद्र शुक्ल: हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सन् 2005, पृष्ठ 79

14. हजारी प्रसाद द्विवेदी: हिंदी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली, 2016, पृ० 103
15. सुंदरदास: सुंदरदास ग्रंथावली, संपादक स्वामी नारायण दास, श्री दादू दयालु महासभा जयपुर, 1990 (पृष्ठ 129)
16. सुंदरदास: सुंदरदास ग्रंथावली, संपादक स्वामी नारायण दास, श्री दादू दयालु महासभा जयपुर, 1990 (पृष्ठ 150)